मालवा का जैन वाङ्मय

डॉ. तेजसिंह गौड़

जैन साहित्य भारतीय साहित्य में विशिष्ठ स्थान रखता है और साहित्य के विविध अंगों को जैन विद्वानों ने अमूल्य देन दी है। यद्यपि जैन साहित्य नैतिक और धार्मिक दृष्टि से लिखा गया है फिर भी उसे साम्प्रदायिक नहीं कहा जा सकता। नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण से साहित्य सृजन का कारण यह है कि जैन विद्वान सामान्य जनता के नैतिक जीवन का स्तर ऊँचा उठाना चाहते थे। इसके अतिरिक्त जैनाचार्यों ने अपना साहित्य जनता की अपनी भाषा में लिखा जिस तथ्य को समझकर ही महावीर और बुद्ध ने इस दिशा में उपक्रम किये थे। पाली में उनके प्रवचन, संस्कृत में लिखे जाने वाले ब्राह्मण दर्शनों से कहीं अधिक हृदयस्पर्शी होते थे कारण जनता तक उनके पहुंचने में भाषण का व्यवधान आड़े नहीं आता था।

जैन साहित्य का भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से महत्व

जैन विद्वानों ने भारतीय साहित्य के विकास के प्रत्येक चरण को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। स्वयं महावीर स्वामी ने अपने उपदेश तत्कालीन सामान्य जनता की भाषा प्राकृत में दिये और इस भावना को महावीर स्वामी के शिष्यों ने निरन्तर रखा। जब प्राकृत भाषा ने लगभग सातवीं शताब्दी में साहित्यिक स्वरूप ग्रहण कर लिया तब जैन विद्वानों ने अपने साहित्य सृजन का माध्यम बदल दिया और तब से अपभ्रंश में अपना साहित्य लिखने लगे। भारतवर्ष की अनेक प्रान्तीय भाषाएं जैसे मालवी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि अपभ्रंश के मूल से उत्पन्न हुई है। पुरानी हिन्दी में जैन विद्वानों के द्वारा लिखा गया साहित्य आज भी शास्त्र भण्डारों में सुरक्षित है, जो हिन्दी आदि की उत्पत्ति और उनके क्रमिक विकास के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। हिन्दी से अतिरिक्त भी भारतवर्ष की अन्य भाषाओं में भी जैन विद्वानों ने साहित्य सृजन किया। साथ ही साहित्यिक भाषा संस्कृत में भी इन विद्वानों ने पर्याप्त साहित्य रचना की।

जैनाचार्यों की विशेषता रही है कि वे जन्म कहीं लेते हैं तथा उनकी कर्मभूमि कहीं और होती है। उनके साहित्य में उनके जीवन तथा रचनाओं के संबंध में ऐसी कोई विस्तृत जानकारी नहीं होती। ऐसी स्थिति में यह पता लगाना बड़ा कठिन हो जाता है कि कौन से आचार्य ने कौन सा ग्रन्थ कब और कहां लिखा? फिर भी हम मालवा में बारहवीं शताब्दी तक सृजित जैन साहित्य पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। जैन साहित्य मालवा में लिखा गया उसको निम्नांकित भागों में विभक्त किया जा सकता है —

१. आगमिक और दार्शनिक साहित्य
२. कथा साहित्य
३. काव्य
४. स्तोत्र साहित्य
५. अलंकार और व्याकरण साहित्य
६. अन्य साहित्य

१. आगमिक और दार्शनिक साहित्य

जैन साहित्य में आगमिक और दार्शनिक साहित्य का विशेष महत्व है। इसमें ग्यारह अंग, बारह उपांग, छः छेदसूत्र, चार मूल सूत्र, दस प्रकीर्णक और दो अन्य सूत्र अनुयोग द्वार सूत्र और नंदी सूत्र हैं। इस शाखा को भद्रबाहु की बारह निर्युक्तियों, विशेषावश्यक भाष्य, बीस अन्य प्रकीर्णकों, पर्युषणकल्प, जीत कल्प सूत्र, श्राद्धजाती कल्प, पाक्षी सूत्र, वन्दितुसूत्र, क्षमणसूत्र, यतिजीतकल्प और ऋषिभाषित ने और समृद्ध कर दिया तथा इस प्रकार सूत्र संख्या चौराशी तक पहुँच गई है इस शाखा का अध्ययन प्रत्येक युग में बराबर होता रहा है तथा इस पर टीकाएं, उपटीकाएं भी अलग-अलग भाषा में समय-समय पर लिखी जाती रही हैं। न केवल आगम साहित्य में वरन् दर्शन साहित्य में भी उत्तरोत्तर समृद्धि हुई तथा जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मालवा में आगमिक और दार्शनिक साहित्य की सर्वाधिक उल्लेखनीय उपलब्धि है। आचार्य भद्रबाहु के कल्पसूत्र के अतिरिक्त क्षपणक ने जो किंवदन्तियों के अनुसार विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक माने जाते हैं दर्शन शुद्धि, सम्मति तर्कसूत्र, प्रमेयरत्नकोष एवं न्यायावतार ग्रंथों की रचना की। न्यायावतार ग्रन्थ अपूर्व है। यह अत्यन्त लघु ग्रन्थ है किन्तु इसे देखकर गागर में सागर भरने की कहावत याद आ जाती है। बत्तीस श्लोकों में क्षपणक ने सारा जैन न्यायशास्त्र इसमें भर दिया है। न्यायावतार पर चन्द्रप्रभसूरि ने न्यायावतार निवृत्ति नामक विशद टीका भी लिखी है।[1] आगम साहित्य को व्यवस्थित एवं सरल करने का श्रेय आर्यरक्षित सूरि को है। आपका जन्म मन्दसौर में हुआ था। आपने आचार्य तोसलीपुत्र से जैन एवं दृष्टिवाद का अध्ययन किया फिर गुरु की आज्ञा से आचार्य भद्रगुप्त सूरि तथा आर्य वज्रस्वामी के समीप रहकर विद्याध्ययन किया। आचार्य आर्यरक्षित सूरि ने बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की सार्वजनिक हित की दृष्टि से उत्तम एवं महान कार्य यह किया कि यह जानकर वर्तमान में साथ ही भविष्य में भी जैनागमों की गहनता एवं दुरूहवृत्ति से असाधारण मेधावी भी एक बार उन्हें समझने में कठिनाई का अनुभव करेगा, आगमों को चार अनुयोगों में विभक्त कर दिया। यथा

१. चरणा-करणानुयोग
२. गणितानुयोग
३. धर्मकथानुयोग
४. द्रव्यानुयोग[2]

इसके साथ ही आचार्य आर्यरक्षित सूरि ने अनुयोगद्वार सूत्र की भी रचना की जो जैन दर्शन का प्रतिपादक महत्वपूर्ण आगम माना जाता है। यह आगम आचार्य प्रवर की दिव्यतम दार्शनिक दृष्टि का परिचायक है।[3] सिद्धसेन दिवाकर द्वारा रचित "सम्मति प्रकरण" प्राकृत में है। जैन दृष्टि और मन्तव्यों को तर्क शैली में स्पष्ट तथा स्थापित करने में यह जैन वाङ्मय में सर्वप्रथम ग्रन्थ है जिसका आश्रय उत्तरवर्ती सभी श्वेताम्बर एवं दिगम्बर विद्वानों ने लिया।[4] सिद्धसेन दिवाकर ने तत्वार्थाधिगमसूत्र की टीका भी बड़ी विद्वत्ता से लिखी है। इस ग्रन्थ के लेखक को दिगम्बर सम्प्रदाय वाले उमास्वामिन् और श्वेताम्बर सम्प्रदायवाले उमास्वाति बतलाते हैं।[5] देवसेन कृत दर्शनसार का विक्रम संवत् ९९० में धारा के पार्श्वनाथ मंदिर में रचे जाने का उल्लेख मिलता है।[6] इसके अतिरिक्त आलाप पद्धति इनकी न्यायविषयक रचना है। एक लघुनयचक्र जिसमें ८७ नैगमादि नौ नयों को उनकी गाथाओं द्वारा द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो तथा उनके भेदोपभेद के उदाहरणों सहित समझाया है। दूसरी रचना वृहन्नयचक्र है। जिसमें ४२३ गाथाएं हैं और उसमें नयों और निक्षेपों का स्वरूप विस्तार से समझाया गया है। रचना के अंत की ६-७ गाथाओं में लेखक ने एक महत्वपूर्ण बात बतलाई है कि आदितः उन्होंने दव्यसहाव पयास (द्रव्य स्वभाव प्रकाश) नाम के इस ग्रन्थ की रचना दोहा-बंध में की थी किन्तु उनके एक शुभंकर नाम के मित्र ने उसे सुन कर हंसते हुए कहा कि यह विषय इस छंद से शोभा नहीं देता, इसे गाथाबद्ध कीजिये। अतएव उसे उनके माहल्लधवल नामक शिष्य ने गाथा रूप में परिवर्तित कर डाला। स्याद्वाद और नयवाद का स्वरूप समझने के लिये देवसेन की ये रचनाएं बहुत उपयोगी हैं।[7] अमितगति कृत "सुभाषित-रत्न संदोह" में बत्तीस परिच्छेद हैं जिनमें से प्रत्येक में साधारणतः एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। इसमें जैन नीति-शास्त्र के विभिन्न दृष्टिकोणों पर आपाततः विचार किया गया है, साथ-साथ ब्राह्मणों के विचारों और आचार के प्रति इसकी प्रवृत्ति विसंवादात्मक है। प्रचलित रीति के ढंग पर स्त्रियों पर खूब आक्षेप किये गये हैं। एक पूरा परिच्छेद वेश्याओं के संबंध में है। जैन धर्म के आप्तों का वर्णन २८ वें परिच्छेद में किया गया है और ब्राह्मण धर्म के विषय में कहा गया है कि वे उक्त आप्तजनों की समानता नहीं कर सकते क्योंकि वे स्त्रियों के पीछे कामातुर रहते हैं, मद्य सेवन करते हैं और इन्द्रियासक्त होते हैं।[8] अमितगति कृत श्रावकाचार लगभग १५०० संस्कृत पद्यों में पूर्ण हुआ है और वह १५ अध्याय में विभाजित है, जिनमें धर्म का स्वरूप मिथ्यात्व और सम्यक्त्व का भेद, सप्ततत्व, पूजा व उपवास एवं बारह भावनाओं का सुविस्तृत वर्णन पाया जाता है। अंतिम अध्याय में ध्यान का वर्णन ११४ पद्यों में किया गया है जिसमें ध्यान, ध्याता, ध्येय और ध्यानफल का निरूपण है। अमितगति ने अपने अनेक ग्रन्थों में उनके रचनाकाल का उल्लेख किया है। जिनमें विक्रम संवत् १०५० से १०७३ तक के उल्लेख मिलते हैं। अतएव उक्त ग्रन्थ का रचनाकाल लगभग १००० ई. सिद्ध होता है।[9] उनके द्वारा रचित योगसार में ९ अध्यायों में नैतिक व आध्यात्मिक उपदेश दिये गये हैं।[10] अमितगति ने संस्कृत श्लोकबद्ध पंच संग्रह की रचना की जो उसकी प्रशस्ति के अनुसार वि. सं. १०७३ में मसूरिकापुर (वर्तमान मसुदविलोदा जो धारा के पास है) नामक स्थान में समाप्त हुई। इसमें पांचों अधिकारों के नाम पूर्वोक्त ही हैं तथा दृष्टिवाद और कर्मप्रवाद के उल्लेख ठीक पूर्वोक्त प्रकार से ही आये हैं। यदि हम इसका आधार प्राकृत पंच संग्रह को न मानें तो यहां शतक और सप्तति नामक अधिकारों की कोई सार्थकता ही सिद्ध नहीं होती, क्योंकि इनमें श्लोक संख्या उससे बहुत अधिक है किन्तु जब संस्कृत रूपान्तरकार ने अधिकारों के नाम वे ही रखे हैं, तब उन्होंने भी मूल और भाष्य पर आधारित श्लोकों को अलग-अलग रखा हो तो आश्चर्य नहीं।[11] अमितगति की अन्य रचनाओं में भावना-अगिशतिका आराधना, सामायिक पाठ और उपासकाचार का उल्लेख किया जा सकता है।[12] माणिक्य नन्दी जो दर्शनशास्त्र में तलदृष्टा विद्वान थे और त्रैलोक्यनन्दी के शिष्य थे धारा के निवासी थे। इनकी एक मात्र कृति परीक्षामुख नामक एक न्यायसूत्र ग्रन्थ है जिसमें कुल २७७ सूत्र हैं। ये सूत्र सरल, सरस और गंभीर अर्थद्योतक हैं। माणिक्यनंदी ने आचार्य अकलंकदेव के वचन समुद्र का दोहन करके जो न्यायामृत निकाला वह उनकी दार्शनिक प्रतिभा का द्योतक है।[13] इनके शिष्य प्रभाचन्द्र ने परीक्षामुख की टीका लिखी है जो "प्रमेयकमल मार्तण्ड" के नाम से प्रसिद्ध है। प्रमेयकमल मार्तण्ड राजा भोज के राज्यकाल में रचा गया है।"[14] प्रभाचन्द्र के अन्य ग्रन्थों में "न्यायकुमुदचन्द्र" जैन न्याय का एक बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।[15] प्रभाचन्द्र कृत "आत्मानुशासन तिलक"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्नकरण्ड टीका पंचास्तिकाय प्रदीप, प्रवचन सरोज भास्कर, समाधितंत्र, क्रियाकलाप टीका आदि ग्रन्थों का भी पता चलता है।[16] महापंडित आशाधर अपनी विद्वत्ता के लिये प्रसिद्ध हैं। इनकी प्रतिभा काव्य, न्याय, व्याकरण, शब्दकोश, अलंकार, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र, स्तोत्र और वैद्यक आदि सभी विषयों में असाधारण थी। पं. आशाधर कृत सागारधर्मामृत में सप्तव्यसनों के अतिचार का वर्णन श्रावकधर्म की दिनचर्या और साधक की समाधि व्यवस्था पर प्रकाश डालता है।[17] यह ग्रन्थ लगभग ५०० संस्कृत पद्यों में पूर्ण हुआ है और आठ अध्यायों द्वारा श्रावकधर्म का सामान्य वर्णन, अष्ट मूलगुण तथा ग्यारह प्रतिमाओं का निरूपण किया गया है। व्रत प्रतिमा के भीतर बारह व्रतों के अतिरिक्त श्रावकधर्म की दिनचर्या भी बतलाई गई है। अंतिम अध्याय के ११० श्लोकों में समाधिमरण का विस्तार से वर्णन हुवा है। रचनाशैली काव्यात्मक है। ग्रन्थ पर कर्त्ता की सर्वोपम टीका उपलब्ध है जिससे उसकी समाप्ति का समय विक्रम संवत् १२९६ या ई. सन् १२९६ उल्लिखित है।[18] इनकी दूसरी रचना "प्रमेयरत्नाकर" स्याद्वाद विद्या की प्रतिष्ठापना करती है।[19] आशाधर कृत "अध्यात्मरहस्य हाल ही प्रकाश में आया है। इसमें ७२ संस्कृत श्लोकों द्वारा आत्मशुद्धि और आत्मदर्शन एवं अनुभूति का योग भी भूमिका पर प्ररूपण किया गया है। आशाधर ने अपनी अनागारधर्मामृत की टीका की प्रशस्ति में इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ की एक प्राचीन प्रति अंतिम पुष्पिका में इसे धर्मामृत का योगोद्दीपन" नामक अठारवां अध्याय कहा है। इससे प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ का दूसरा नाम योगोद्दीपन भी है और इसे कर्त्ता ने अपने धर्मामृत के अंतिम उपसंहारात्मक अठारवें अध्याय के रूप में लिखा था। स्वयं कर्त्ता के शब्दों में उन्होंने अपने पिता के आदेश से आरब्ध योगियों के लिये इस प्रसन्न, गंभीर और प्रियशास्त्र की रचना की थी।[20] इनकी अन्य रचनाओं में धर्मामृतमूल ज्ञानदीपिका, भव्यकुमुदचन्द्रिका यह धर्मामृत पर लिखी टीका है। इसका नाम क्षोदक्षमा था परन्तु विद्वानों ने इसकी सरसता और सरलता से मुग्ध होकर 'भव्यकुमुदचन्द्रिका' रखा। मूलाराधना शिवार्य की आराधना पर टीका। आराधनासार टीका नित्यमहोद्योत रत्नमय विधान आदि है।[21] धारा के निवासी लाड़बागड संघ और बलात्काएण के आचार्य श्रीचन्द्र ने शिवकोटि की "भगवती आराधना" पर "टिप्पण" लिखा है यह टिप्पण श्रीचन्द्र ने राजा भोज के राजत्वकाल में बनाकर समाप्त किया है।[22]

२. कथासाहित्य

कथात्मक साहित्य के अन्तर्गत हम कथाकोश, पौराणिक ग्रन्थ, चरितग्रन्थ एवं ऐतिहासिक प्रकार के ग्रन्थों को सम्मिलित करते हैं। इस श्रेणी में सर्वप्रथम हम पुन्नार संघ के आचार्य जिनसेन के इतिहासप्रधान चरित काव्य "हरिवंश" का उल्लेख करेंगे। इस ग्रन्थ की रचना जिनसेनाचार्य ने शक संवत् ७०५ में वर्धमानपुर वर्तमान बदनावर जिला धार के पार्श्वालय (पार्श्वनाथ के मंदिर में) की "अन्नराजवसति" में की और उसका जो शेष भाग रहा उसे वहीं के शांतिनाथ मंदिर में बैठकर पूरा किया। दिगम्बरी सम्प्रदाय के कथासंग्रहों में इसका तीसरा स्थान है।[23] हरिषेणकृत कथाकोश की रचना विनायकपाल राजा के राज्यकाल में बदनावर में की गई। विनायकपाल प्रतिहार वंश का राजा था जिसकी राजधानी कन्नोज थी। कथाकोश की रचना वि. सं. ९८९ में हुई। यह कथाकोश साढ़े बारह हजार श्लोक परिमाण का वृहद् ग्रन्थ है।[24] यह संस्कृत पद्यों में रचा गया है और उपलब्ध समस्त कथाकोशों में प्राचीनतम सिद्ध होता है। इसमें १५७ कथाएं हैं जिनमें चाणक्य, शकटाल, भद्रबाहु, वररुचि, स्वामिकार्तिकेय आदि ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्र भी हैं। इस कथाकोश के अनुसार भद्रबाहु उज्जयिनी के समीप भाद्रपद में ही रहे थे और उनके दीक्षित शिष्य राजा चन्द्रगुप्त अमरनाथ विशाखाचार्य संघ सहित दक्षिण के पुन्नाट देश को गये थे। कथाओं में कुछ नाम व शब्द जैसे भेदज्ज (मेतार्य) विज्जदाढ़ (विद्युदष्ट्र) प्राकृत रूप में प्रयुक्त हुए हैं जिससे अनुमान होता है कि रचयिता कथाओं को किसी प्राकृत कृति के अधार पर लिख रहा है। उन्होंने स्वयं अपने कथाकोश को आराधनोद्धृत कहा है, जिससे अनुमानतः भगवती आराधना का अनुमान होता है।[25] आचार्य महासेन ने प्रद्युम्नचरित की रचना ११ वीं शताब्दी के मध्य भाग में की।[26] अमितगति कृत धर्मपरीक्षा की शैली का मूल स्रोत यद्यपि हरिभद्र कृत प्राकृत धूर्ताख्यान है तथापि यहां अनेक छोटे बड़े कथानक सर्वथा स्वतंत्र व मौलिक हैं। ग्रन्थ का मूल उद्देश्य अन्य धर्मों की पौराणिक कथाओं की असत्यता को उनसे अधिक कृत्रिम, असंभव व ऊटपटांग आख्यान कहकर, सिद्ध करके सच्चा धार्मिक श्रद्धान उत्पन्न करना है। इनमें धूर्तता और मूर्खता की कथाओं का बाहुल्य है।[27] प्राकृत कोशों में सर्वप्राचीन रचना धनपालकृत "पाइयलच्छीनाममाला" है जो उसकी प्रशस्ति के अनुसार कर्त्ता ने अपनी भगिनी सुन्दरी के लिये धारा नगरी में विक्रम संवत् १०२९ में लिखी थी, जबकि मालवनरेन्द्र द्वारा मान्यखेट लूटा गया था। यह घटना अन्य ऐतिहासिक प्रमाणों से भी सिद्ध होती है। धारा नरेश हर्षदेव ने एक शिलालेख में उल्लेख किया है कि उसने राष्ट्रकूट राजा खोट्टिगदेव की लक्ष्मी का अपहरण किया था। इस कोश के अमरकोश की रीति से प्राकृत पद्यों में लगभग १००० प्राकृत शब्दों के पर्यायवाची शब्द कोई २५० गाथाओं में दिये हैं। प्रारंभ में कमलासनादि १८ नाम पर्याय एवं एक गाथा में, फिर लोकाग्र आदि १६७ तक नाम आधी-आधी गाथा में, तत्पश्चात् ५९७ तक एक-एक चरण में और शेष छिन्न अर्थात् एक गाथा में कहीं चार, कहीं पांच और कहीं छह नाम दिये गये हैं। ग्रन्थ के ये चार परिच्छेद कहे जा सकते हैं। अधिकांश नाम और उनके पर्याय तद्भव हैं। सच्चे देशी शब्द अधिक से अधिक पंचमांश होंगे।[28] संस्कृत गद्यात्मक आख्यानों में धनपालकृत तिलकमंजरी (ई. ९७०) की भाषाशैली बड़ी ओजस्विनी है।[29] मुनि श्रीचन्द्र ने महाकवि पुष्पदंत के उत्तरपुराण का टिप्पण लिखा है जिसे उन्होंने सागरसेन नाम के सैद्धान्तिक विद्वान से महापुराण के विषय में पदों का विवरण जानकर और मूल टिप्पण का अवलोकन कर वि. सं. १०८० राजाभोज के राज्यकाल में लिखा।[30] इसके अतिरिक्त इन्होंने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रविषेणकृत पदमचरित पर टिप्पण वि.स. १०८७ में एवं पुराण सार वि. सं. १०८० में लिखा।[31] प्रभाषचन्द्र ने आराधना गद्य कथा कोश की रचना की।[32] इसमें चन्द्रगुप्त के अतिरिक्त समन्तभन्द्र और अकलंक के चरित्र भी वर्णित हैं।[33] अपभ्रंश भाषा के एक कवि "वीर" की वरांगचरित "शांतिनाथ चरित", "सुद्धयवीर" अम्बादेवीरास और जम्बूसामिचरिउ का पता चलता है किन्तु इनकी प्रथम चार रचनाओं में से एक भी आज उपलब्ध नहीं है। पांचवीं कृति "जम्बूसामिचरिउ" ग्रन्थ की अंतिम प्रशस्ति के अनुसार वि. सं. १०७६ में माह माघ की शुक्ल दसमीं को लिखी गई।[34] कवि ने ११ संधियों में जम्बूस्वामी का चरित्र चित्रण किया है। वीर के जम्बूसामिचरिउ में ११ वीं सदी के मालवा का लोक जीवन सुरक्षित है। वीर के साहित्य का महत्व "मालवा" की भौगोलिक, आर्थिक, राजनैतिक और लोक संस्कृति की दृष्टि से तो है ही, परन्तु सर्वाधिक महत्व "मालवी भाषा" की दृष्टि से है। मालवी शब्दावली का विकास "वीर" की भाषा में खोजा जा सकता है।[35] नयनंदीकृत "संकल विधि विधान कहा" वि.सं. ११०० में लिखा गया।[36] यद्यपि यह खंड काव्य के रूप में है किन्तु विशाल काव्य में रखा जा सकता है। इसकी प्रशस्ति में इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है। उसमें कवि ने ग्रन्थ बनाने के प्रेरक हरिसिंह मुनि का उल्लेख करते हुए अपने पूर्ववर्ती जैन, जैनेतर और कुछ समसामयिक विद्वानों का भी उल्लेख किया है।[37] कवि दामोदर ने राजा देवपाल के राज्य में नागदेव के अनुरोध पर नेमिजिन चरित्र बनाया था।[38] पं. आशाधर ने अमरकोश की टीका भी लिखी है।[39] और परमार राजा देवपाल के राज्यकाल में पं. आशाधर ने सं. १२९२ में त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र की रचना की।[40] जिसमें ६३ शलाका पुरुषों का चरित्र अपेक्षाकृत संक्षेप में वर्णन किया गया है जिसमें प्रधानतः जिनसेन व गुणभद्रकृत महापुराण का अनुसरण पाया जाता है।[41]

३. काव्य

मालवा के जैन विद्वानों में अनेक बड़े कवि हो चुके हैं। कुछ काव्यग्रन्थों का, जो चरित्र एवं ऐतिहासिक श्रेणी में आते हैं, उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। कुछ ग्रन्थ जिनका उल्लेख महाकाव्यों या लघुकाव्यों की श्रेणी में आता है वह इस प्रकार है:—

नयनंदी कृत "सुदर्शनचरित्र" अपभ्रंश का खण्ड काव्य है जिसकी रचना वि.सं. ११०० में हुई।[42] यह ग्रन्थ महाकाव्यों की श्रेणी में रखने योग्य है। पं. आशाधरकृत अनेक काव्य ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। इनकी रचना "भारतेश्वराभ्युदय" में भरत के ऐश्वर्य का वर्णन है। इसे सिद्धचक्र भी कहते हैं। क्योंकि इसके प्रत्येक सर्ग के अंत में सिद्ध पद आया है।[43] राजमती विप्रलम्भ खण्ड काव्य है। जिस पर लेखक की स्वयं की "स्वोपत्रकल्प" जिसका कि दूसरा नाम "प्रतिष्ठासारोद्धार" था धर्मामृत का एक अंग है वह भी पं. आशाधर की ही रचना है।[44] इसके अतिरिक्त और कोई काव्य ग्रन्थों की जानकारी हमें नहीं मिलती, जो महाकाव्य मिले हैं वे हमारी समय सीमा के पर्याप्त बाद के हैं जिनका उल्लेख करना उचित नहीं प्रतीत होता।

४. स्तोत्र साहित्य

स्तोत्रों में सबसे प्राचीन स्तोत्र सिद्धसेन दिवाकर के हैं। सिद्धसेन दिवाकर के दो स्तोत्र (१) कल्याण मंदिर स्तोत्र तथा (२) वर्द्धमान द्वात्रिंशिका स्तोत्र उपलब्ध है। इनका कल्याण मंदिर स्तोत्र ४४ श्लोकों में है। यह पार्श्वनाथ भगवान का स्तोत्र है। इसकी कविता में प्रासाद गुण कम है और कृत्रिमता एवं श्लेष की भरमार है। परन्तु प्रतिभा की कमी नहीं है। किंवदन्ती है कि कल्याण मंदिर स्तोत्र का पाठ समाप्त होते ही उज्जयिनी के महाकाल मंदिर में शिवलिंग फट गया और उसके मध्य में पार्श्वनाथ की मूर्ति निकल आई।[45] इसके अंतिम भिन्न छंद के एक पद्य में इसके कर्त्ता का नाम कुमुदचन्द्र सूचित किया गया है जिसे कुछ लोग सिद्धसेन का ही दूसरा मानते हैं दूसरे पद्य के अनुसार यह २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की स्तुति में रचा गया है। भक्तामर के सदृश्य होते हुए भी यह अपनी काव्य कल्पनाओं व शब्द योजना में मौलिक ही है—हे जिनेन्द्र! आप उन भक्तों को संसार से कैसे पार कर लेते हैं जो अपने हृदय में आपका नाम धारण करते हैं? हां, जाना, जो एक मशक भी जल में तैरकर निकल जाती है वह उसके भीतर भरे हुए पवन का ही तो प्रभाव है। हे जिनेश, आपके ध्यान से भव्यपुरुष क्षणमात्र में देह को छोड़कर परमात्मदशा को प्राप्त हो जाते हैं, क्यों न हों, तीव्र अग्नि के प्रभाव से नाना धातुएं अपने पाषाण भाव को छोड़कर शुद्ध सुवर्णत्व को प्राप्त कर लेती हैं।[46] सिद्धसेन दिवाकर कृत "वर्द्धमान द्वात्रिंशिका" दूसरा स्तोत्र है। यह ३२ श्लोकों में भगवान महावीर की स्तुति है। इसमें कृत्रिमता एवं श्लेष नहीं है। प्रसादगुण अधिक है। भगवान महावीर को शिव, बुद्ध, हृषिकेश, विष्णु एवं जगन्नाथ मानकर प्रार्थना की गई है।[47] इन दोनों स्तोत्रों में सिद्धसेन दिवाकर की काव्यकला ऊंची श्रेणी की है।

मानतुंगाचार्य कृत "भक्तामर स्तोत्र" को प्रारंभ करने की शैली पुष्पदंत के शिवमहिम्न स्तोत्र से प्रायः मिलती है। प्रतिहार्य एवं वैभव वर्णन में भक्तामर पर पात्र केसरी स्तोत्र का भी प्रभाव परिलक्षित होता है।[44] इनका भक्तामर स्तोत्र श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायों में समान रूप से समादृत है। कवि की यह रचना इतनी लोकप्रिय रही है, जिससे इसके प्रत्येक अंतिम चरण को लेकर समस्या पूर्त्यात्मक स्तोत्र काव्य लिखे जाते रहे हैं। भक्तामर बहुत ही लोकप्रिय और सुप्रचलित एवं प्रायः प्रत्येक जैन के जिह्वाग्र पर है। दिगम्बर परम्परानुसार इसमें ४८ तथा श्वेताम्बर में ४४ पद्य हैं। स्तोत्र की रचना सिंहोन्नता वसन्ततिलका छन्द में हुई है। इसमें स्वयंकर्त्ता के अनुसार प्रथम जिनेन्द्र अर्थात् ऋषभनाथ की स्तुति की गई है। तथापि समस्त रचना ऐसी है कि वह किसी भी तीर्थंकर के लिये सार्थक हो सकती है। प्रत्येक पद्य में बड़े सुन्दर उपमा, रूपक आदि अलंकारों का समावेश है—"हे भगवन्! आप अद्भुत जगत प्रकाशी दीपक हैं, जिसमें न तेल है न बाती और न धूम्र; जहां पर्वतों को हिला देने वाले वायु झोंके भी पहुंच नहीं सकते तथापि जिससे जगत भर में प्रकाश फैलता है। हे मुनीन्द्र, आपकी महिमा सूर्य से भी बढ़कर है, क्योंकि आप न कभी अस्त होते हैं, न राहुगम्य हैं न आपका महान प्रभाव मेघों में निरुद्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आप एक साथ समस्त लोकों का स्वरूप सुस्पष्ट करते हैं। भगवन् आप ही बुद्ध हैं क्योंकि आपके बुद्धि व बोध की विबुधजन अर्चना करते हैं। आप ही शंकर हैं क्योंकि आप भुवनत्रय का शुभ अर्थात् कल्याण करते हैं। और आप ही विधाता ब्रह्मा हैं क्योंकि आपने शिव मार्ग (मोक्षमार्ग) की विधि का विधान किया है इत्यादि।[49] इसका सम्पादन व जर्मन भाषा में अनुवाद डॉ. याकोबी ने किया है। इस स्तोत्र के आधार से बड़े विशाल साहित्य का निर्माण हुवा है। इस पर कोई २०-२५ तो टीकाएं लिखी गई हैं एवं भक्तामर स्तोत्र कथा व चरित्र, छाया स्तवन, पंचाग विधि, पादपूर्ति स्तवन, पूजा, मंत्र माहात्म्य, व्रतोद्यापन आदि भी २०-२५ से कम नहीं हैं। प्राकृत में भी मानतुंगकृत भयहरस्तोत्र पार्श्वनाथ की स्तुति के रूप में रचा गया है।[50] प्रभाचन्द्र ने वृहत् स्वयंभू स्तोत्र टीका लिखी है।[51] पं. आशाधरकृत सिद्धगुणस्तोत्र स्वोपज्ञ टीका सहित[52] तथा भूपाल चतुर्विंशति टीका भी इनके ही द्वारा लिखी बताई जाती है।[53]

५. अलंकार और व्याकरण साहित्य

मालवा के जैन विद्वानों ने अलंकार एवं व्याकरण जैसे विषयों पर भी साहित्य सृजन किया है। प्रभाचन्द्र का शब्दाम्भोजभास्कर एक व्याकरण ग्रन्थ है।[54] पं. आशाधर ने क्रियाकलाप के नाम से व्याकरण ग्रन्थ की रचना की तथा अलंकार से संबंधित काव्यालंकार टीका लिखी।[55]

६. अन्य साहित्य

आचार्य अमितगति की कुछ रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं जिनके निम्न नाम हैं :–

१. जम्बूद्वीप २. चन्द्रप्रज्ञप्ति–ये दोनों ग्रन्थ सम्भवतः भूगोल विषयक हैं। ३. सार्धद्वय द्वीप प्रज्ञप्ति तथा ४. व्याख्या प्रज्ञप्ति हैं।[56] पं. आशाधर ने आयुर्वेद से संबंधित ग्रन्थों की भी रचना की थी। इन्होंने वाग्भट्ट के आयुर्वेद ग्रन्थ अष्टांगहृदयी की टीका "अष्टांगहृदयोद्योतिनी" के नाम से लिखी।[57]

इस प्रकार मालवा में जैन विद्वानों के विविध विषयक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं तथा अभी भी नये-नये जैन विद्वानों के ग्रन्थ प्रकाश में आते जा रहे हैं। यदि समूचे भारतवर्ष के जैन शास्त्र भण्डारों तथा व्यक्तिगत संग्रहालयों में खोज की जाये तो और अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों के प्रकाश में आने की संभावना है। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त विवरण से एक बात स्पष्ट रूप से विदित हो जाती है कि जितना भी साहित्य जैन धर्म में उपलब्ध है उस समस्त साहित्य का सृजन जैनाचार्यों के द्वारा हुवा है क्योंकि वणिक् जाति व्यापार प्रधान जाति है इस कारण इस जाति के व्यक्तियों का तो साहित्य सृजन की ओर ध्यान नहीं के बराबर जाता है और यही कारण है कि जैनाचार्यों के द्वारा रचा गया साहित्य हमारे सामने है। उसकी भी विशेषता यह है कि यह साहित्य भी साम्प्रदायिक ग्रंथ तक ही सीमित नहीं रह गया है वरन् साहित्य के विभिन्न अंगों पर इन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों की अधिकारपूर्वक रचना कर साहित्य के भण्डार में अभिवृद्धि की है।

संदर्भ ग्रंथों की सूची

१. उज्जयिनी दर्शन पृष्ठ ९३
२. श्रीमद् राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ पृष्ठ ४५९
३. वही पृष्ठ ४५९
४. स्व. बाबू श्री बहादुरसिंहजी सिन्धी स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ १२
५. संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी पृष्ठ ११६
६. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५४४
७. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृष्ठ ८७
८. संस्कृत साहित्य का इतिहास भाग २ कीथ, पृष्ठ २८६-८७
९. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृष्ठ ११३-१४
१०. वही पृष्ठ १२१
११. वही पृष्ठ ८१
१२. संस्कृत साहित्य का इतिहास गैरोला पृष्ठ ३४५
१३. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५४६
१४. वही पृष्ठ ५४८
१५. भारतीत संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृष्ठ ८९
१६. संस्कृत साहित्य का इतिहास गैरोला पृष्ठ ३५५
१७ वही पृष्ठ ३४६
१८. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृष्ठ ११४
१९. वीरवाणी वर्ष १८ अंक १३ पृष्ठ २१
२०. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान पृष्ठ १२२
२१. वीरवाणी पृष्ठ २२
२२. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५४६
२३. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास देसाई पृष्ठ १७७-७८
भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृष्ठ ३३२
२४. संस्कृत साहित्य का इतिहास गैरोला पृष्ठ ३५१
२५. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृष्ठ ११७
२६. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५४५-४६
२७. भार. सं. में जैन का योगदान पृष्ठ १७७
२८. वही पृष्ठ १९५-९६
२९. वही पृष्ठ १७४
३०. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५४६
३१. संस्कृत साहित्य का इतिहास गैरोला पृष्ठ ३५५
३२. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५४५
३३. भार. सं. में जैन धर्म का यो. पृष्ठ १७८
३४. दैनिक नई दुनिया दिनांक ९-७-७२
३५. वही दिनांक ९-७-७२
३६. भार. सं. में जैन धर्म का यो. पृष्ठ १६४
३७. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५४७-४८
३८. वही पृष्ठ ५५१
३९. वीरवाणी वर्ष १८ अंक १३ पृष्ठ २२
४०. जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ ३९६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. भार. सं. में जैन धर्म का यो. पृष्ठ १६८
४२. वही पृष्ठ १६३
४३. वीरवाणी वर्ष १८ अंक १३ पृष्ठ २१-२२
४४. वही पृष्ठ २२
४५. संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी पृष्ठ ११८
४६. भार. सं. में जैन धर्म का यो. पृष्ठ १२५-२६
४७. संस्कृति केन्द्र उज्जयिनी
४८. अनेकांत वर्ष १८ किरण ६ पृष्ठ २४५
४९. भार. सं. में जैन धर्म का यो. पृष्ठ १२५
५०. वही पृष्ठ १२५
५१. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ ५४८
५२. भार. सं. में जैन धर्म का यो. पृष्ठ १२७
५३. गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५५१
५४. भार. सं. में जैन धर्म का यो. पृष्ठ १८५
५५. वीरवाणी वर्ष १८ अंक १३ पृष्ठ १८५
५६. वीरवाणी वर्ष १८ अंक १३ पृष्ठ २२
५७. संस्कृत साहित्य का इतिहास गैरोला पृष्ठ ३४५
५८. वीरवाणी पृष्ठ २२

(जैन साहित्य : श्वेताम्बर, दिगम्बर, . . . पृष्ठ १०२ का शेष)

जैन साहित्य में गद्य एवं चम्पू साहित्य का भण्डार भी बहुत भरा पूरा है। ऐसे ग्रन्थों में प्राचीनतम वासुदेव हिन्दी है जो स्त्रलम्बकों में पूर्ण हुई है। इसे दो लेखकों ने पूर्ण किया है। पहले खण्ड में २९ लम्बक हैं जो लगभग ११ हजार श्लोक प्रमाण का है तथा इसके कर्त्ता संघदास गणिवाचक हैं। दूसरे खण्ड में ७१ लम्बक हैं और १७ हजार श्लोक प्रमाण का है, इसके कर्ता धर्मसेन गणि हैं। इस परम्परा में समरादित्य कथा, कुवलयमाला रेण चूडराय, चरियम कालकाचारि की कथा जिनदत्ताख्यान रेणासोहरिकहा, जम्बूसामीचरित्र, आदि साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं। इन स्वतंत्र लम्बी कथाओं के अतिरिक्त कथाकोष बनाने की प्रवृत्ति का विकास भी जैन साहित्य में हो गया था। कथा रत्नकोष-विजयचन्द्र केवली, विवेकमंजरी, उपदेशकन्दली, कथा महोदधि, अभिमान देशना तथा दश श्रावकचरित महत्वपूर्ण रचनाएं हैं।

उपर्युक्त सर्वेक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जैन साहित्य में विरक्त मुनियों के आश्रमों में पलता रहा अतः उसमें साहित्यिक तत्वों का समावेश अत्यल्प ही हो सका। धीरे-धीरे त्रिषष्टिशलाका पुरुषों की धारणा के दृढ़ होने के साथ चरितकाव्य जैसी प्रवृत्तियों का समावेश इस साहित्य में हुआ जिसके परिणाम स्वरूप शुद्ध रूप से धार्मिक समझे जाने वाले साहित्य में भी व्यक्ति परकता अथवा व्यक्तित्व की सरसता का संचार हुवा जिससे ये रचनाएं शुद्ध कलात्मक साहित्य की ओर उन्मुक्त हो गईं। दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदायों का प्रभाव शुद्ध धार्मिक साहित्य में बहुत स्पष्ट है तथा इनकी मान्यताओं को ध्यान में रखकर निर्भ्रान्त रूप से यह कह सकते हैं कि यह साहित्य दिगम्बर सम्प्रदाय का है तथा उससे इतर श्वेताम्बर सम्प्रदाय का। कला और सौन्दर्य जैन साहित्य में यह विभाजन उतना स्पष्ट नहीं रह गया है क्योंकि इनका उपयोग जैन मुनियों तक सीमित नहीं रह गया था अपितु यह गृहस्थ जीवन से जुड़ गया था। गृहस्थों में सम्प्रदायों की रूढ़ियों के पालन की प्रवृत्तिनहीं दिखाई पड़ती वे तो सामान्य धर्म को ग्रहण कर संतुष्ट होते हैं यही कारण है कि जैन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में साम्प्रदायिक भेद को उजागर न कर उसे प्रचछन्न ही रहने दिया है जिसका प्रभाव यह पड़ा है कि ये रचनाएं केवल सम्प्रदाय की सीमा को ही नहीं तोड़ सकी अपितु देशकार की सीमा को तोड़कर सार्वभौम एवं सार्वकालिक भी बन गई हैं। इस साहित्य से हिन्दी साहित्य ने प्रेरणा प्राप्त की हैं वह कोई भी साहित्य उससे प्रेरणा ले सकता है जो नैतिक मर्यादाओं की रक्षा करते हुए मानव के चितरंजन में प्रवृत्त हो। वस्तुतः जैन साहित्य एक ऐसी निधि है जो जीवन्त है जिसे आधुनिक युग में प्रेरणा का स्रोत बनाया जा सकता है। ☐

(जैन साहित्य में लोककथा के तत्व . . . पृष्ठ १०४ का शेष)

हैं कि भारतीय लोक कथाओं के वैज्ञानिक अध्ययन में जिन कथानक रूढ़ियो की उपलब्धि हुई है, उनमें से अधिकतम कथानक रूढियां जैन कथा साहित्य में थी जो अपने मूल रूप से उपलब्ध होती है। कई स्थलों पर घटनाचक्र में भी समानता है और कई प्रसंगों का चित्रण भी यथावत् हुआ है। इन कथानक रूढियों से ही हम मूल कथाओं के देश, काल और परिस्थितियों का भी अध्ययन कर सकते हैं।

समग्र तथ्यों और आधारों की पृष्ठभूमि में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि लोककथाओं की महत्ता जहां लोकरंजन हेतु आंकी गई है, वहीं जैन कथाओं का उद्देश्य निश्चित ही धर्म प्रचार ही रहा है। परन्तु जैन कथाओं की निर्मिति में लोक कथाओं की आधार भूमि मूल रूप से कार्य करती रही है और यही कारण है कि उनमें लोक तत्वों का समावेश प्रचुर मात्रा में हुआ है। उनका ढांचा और उनके अंग-प्रत्यंगों की संरचना में भी भारतीय लोक कथाओं की अभूतपूर्व देन रही है। इसी का परिणाम है कि जैन साहित्य में उपलब्ध कथा गाथाएं जैन और जैनेतर समाज में आज भी अपना अस्तित्व प्रस्थापित किये हुए हैं।

☐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org